बुद्धवर्ष २५४६, वैशाख पूर्णिमा, २६ मई, २००२ वर्ष ३१ अंक १२

धम्मवाणी

यं एसा सहती जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवड्ढंव बीरणं॥
– धम्मपद ३३५

लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लेती है, उसके शोक वैसे ही बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में 'वीरण' नाम की जंगली घास (बढ़ती रहती है)।

[धारण करे तो धर्म]

अविद्या को तोड़ें

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की बाईसवीं कड़ी)

तृष्णा ही अपने आप में बड़ी दुःखदायिनी है। तृष्णा का अर्थ यही है कि तृप्ति नहीं है, संतुष्टि नहीं है। जो है उससे अतृप्त है, असंतुष्ट है और जो नहीं है उसके प्रति बड़ी तृष्णा है, बड़ी प्यास है। अरे, जो नहीं है सो तो नहीं ही है ना? रहना तो उसके साथ है जो कि है, और उससे अतृप्ति है। उससे असंतुष्टि है तो व्याकुलता ही होगी ना! तृष्णा अपने आपमें व्याकुलता पैदा करने वाली और इस तृष्णा का कहीं व्यसन लग जाय, तृष्णा के प्रति आसक्त हो जाय तब तो दुःख का क्या ठिकाना? बड़ा दुःखी होता है। तृष्णा का उपादान बड़ा दुःखदायी होता है। फिर दूसरा उपादान मैं और मेरे के प्रति बहुत बड़ी आसक्ति। जितनी बड़ी आसक्ति उतना ही व्याकुल। एक तीसरे प्रकार का उपादान भी होता है, अपनी विचारधारा के प्रति उपादान, अपनी परंपरा के प्रति उपादान, अपनी दार्शनिक मान्यता के प्रति उपादान। और भोला आदमी उसी को धर्म कहता है तो मेरे धर्म के प्रति उपादान से बहुत व्याकुल हो जाता है। विचारधारा के खिलाफ कोई एक भी शब्द कहे तो कितना तिलमिलाता है। जैसे गर्म तेल के छींटे पड़ गये। कितना व्याकुल होता है। बहुत आसक्ति है ना! यह नहीं समझता कि भाई, तूने रंगीन चश्मे लगा रखे हैं। तूने लाल रंग का चश्मा लगा रखा है। तुझे सब लाल ही लाल दिखाई दे रहा है। किसी दूसरे ने हरे रंग का चश्मा लगा रखा है, उसे सब हरा ही हरा दिखाई दे रहा है और दोनों लड़े जा रहे हैं। एक कहता है लाल ही लाल है, दूसरा कहता है हरा ही हरा है। एक दूसरे का सिर फोड़ देंगे तो भी किसी दूसरे को अपनी बात नहीं मनवा सकेंगे, क्योंकि चिपकाव चश्मे के उस रंग से हो गया। वह रंगीन चश्मा दूर करें, फिर देखें, दोनों के दोनों यथार्थ को देख करके झगड़ा बंद कर देंगे। पर कैसे उतारे? इतना गहरा चिपकाव है अपनी मान्यता के प्रति कि बड़ा दुःखी बनाता है, बड़ा दुःखी बनाता है।

इसी तरह का एक और चिपकाव, एक और उपादान अपने कर्मकांडों के प्रति। अलग-अलग परंपराओं के, अलग-अलग समाज के अलग-अलग कर्मकांड। उनके प्रति इतना गहरा चिपकाव। जिस समाज का व्यक्ति जिस तरह का कर्मकांड करता आ रहा है, बस, उसी को धर्म मानता है। यही धर्म है, यही धर्म है। कभी-कभी तो ऐसा दुःखद आश्चर्य भी होता है। कोई-कोई आता है, विपश्यना साधना करता है, उससे बड़ा लाभान्वित होता है। आकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है कि गोयन्काजी, आप बर्मा से यह क्या विद्या ले आये। मेरा तो बड़ा कल्याण हो गया। इतना क्रोधी व्यक्ति, कहां गया वह क्रोध? इतना भयभीत था, भय दूर हो गया। इतना अहंकारी, अहंकार दूर होता जा रहा है। मेरा राग दूर होता जा रहा है। मेरा द्वेष दूर होता जा रहा है। और क्या चाहिए? जीवन की धारा बदल गयी। जीना आ गया। मैं सारे जीवन भर यह जो भारत की विद्या, यहां से लुप्त हो गयी थी, पड़ोसी देश ने संभाल कर रखी और आप उसे ले आये। मैं सारे जीवन भर यह विद्या छोड़ने वाला नहीं। सारे जीवन भर यही साधना करता रहूंगा। लेकिन गोयन्काजी, धर्म तो अपना ही पालूंगा। हम उसके मुँह की ओर देखें। और धर्म क्या पालेगा रे? यह विद्या धर्म नहीं है? अरे, यह तो कोई छोटी-मोटी टेक्नीक है मन के विकार निकालने की। धर्म तो कुछ और ही है। तो क्या धर्म है? शील-सदाचार का जीवन जीना सिखाया, वह धर्म नहीं है? धर्म कुछ और है? मन को वश में करना सिखाया, वह धर्म नहीं है, धर्म कुछ और है। अपनी प्रज्ञा जगा कर चित्त को निर्मल करना सिखाया और उसके परिणाम तुझे मिल रहे हैं। वह तो धर्म नहीं है, धर्म कुछ और है?

तो क्या धर्म है? जो कोई कर्मकांड अपनी परंपरा का करता आ रहा है, बस, वह धर्म है। जो निस्सार है उसे सार बना बैठा। कहां उलझ गये? धर्म के नाम पर कहां उलझ गये? धीरे-धीरे, काम करते-करते वह अवस्था आती है, जब सार को सार समझने ही लगता है, निस्सार को निस्सार समझने ही लगता है। लेकिन तब तक के लिए इतनी गहरी आसक्ति, इतनी गहरी आसक्ति और उस आसक्ति के कारण व्याकुलभी होता है। जब-जब कोई व्यक्ति अंदर से व्याकुल हो जाय, तो उसे जा करके देखना चाहिए। इस वक्त मेरी व्याकुलता का क्या कारण है? तो इन चारों उपादानों में से कोई एक उपादान होगा। तृष्णा का उपादान होगा। मैं या मेरे के प्रति उपादान होगा। अपनी परंपराओं की मान्यता के प्रति उपादान होगा या अपने किसी कर्मकांड के प्रति उपादान होगा। इनमें से, चारों में से कोई न कोई सिर उठाये।

यह उपादान है, इसलिए दुःखी है। यह व्यक्ति जो बोधि-वृक्ष के नीचे बैठा हुआ यह सारा रहस्य देख रहा है, सारा रहस्य समझ रहा है। समझते-समझते, अंतर्मन की गहराइयों में जाते-जाते जैसे अंधकार दूर हो गया। प्रकाश आ गया। सारी बात समझ में आने लगी।

अरे, यह संसार-चक्र कैसे चलता है? यह भव-चक्र कैसे चलता है? यह लोक-चक्र कैसे चलता है? यह दुःख-चक्र कैसे चलता है? एकदम समझ में आ गया। जैसे हथेली पर आंवला रख दे। उस आंवले को घुमा-फिराके चाहे जैसे देख लो। खूब समझ में आ गया। ऐसे ही यह भव-चक्र खूब समझ में आ गया। यही तो सम्यक संबोधि हुई। इसी से तो सम्यक संबुद्ध बना। क्या समझ में आ गया? इस सच्चाई को खूब समझ गया कि **अविज्जापच्चया सङ्खारा**, जो कर्म-संस्कारखनते हैं, वे क्यों बनते हैं? अविद्या की वजह से बनते हैं। क्या अविद्या? किसी स्कूल में नहीं पढ़ा, यह अविद्या? किसी कालेज में नहीं पढ़ा, यह अविद्या? किसी शास्त्र को नहीं पढ़ा, यह अविद्या? क्या अविद्या? अरे, अविद्या का अर्थ नहीं समझे! विद्या कहते हैं उस ज्ञान को जो अपने वेदन से प्रकट हो। वेदन माने अपने अनुभव से प्रकट हो। जो ज्ञान अपने अनुभव से नहीं प्रकट हुआ, अविद्या ही अविद्या है। यह दुःख है। यह दुःख का कारण है। यह दुःख का निवारण है। यह दुःख के निवारण का उपाय है, तरीका है, मार्ग है। बुद्धि के स्तर पर खूब समझता है। उसकी बड़ी चर्चा करता है। उसका बड़ा वर्णन करता है। उसका बड़ा गुण गाता है। अनुभूति कुछ नहीं। अनुभूति नहीं तो अविद्या ही अविद्या, अविद्या ही अविद्या।

इसी प्रकार कोई दार्शनिक मान्यता मानता है। मानता ही है, जानता नहीं। वह मान्यता है। उसके लिए जान्यता नहीं है तो अविद्या ही अविद्या। स्ववेदन पर यथार्थ उतरे तो यथार्थ है। अन्यथा धोखा हो सकता है और फिर उससे कोई लाभ नहीं होता। अंतर्मुखी होकर के सच्चाई को अपनी अनुभूतियों पर उतारता है तो उसका बड़ा लाभ यह होता है कि मानस का स्वभाव पलटते चला जाता है। विकारग्रस्त मानस विकारविमुक्त होता चला जाता है। दुःखी मानस दुःखमुक्त होता चला जाता है।

होश नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूं? कभी अंतर्मुखी होकर के सच्चाई को देखने का काम ही नहीं किया। तो इस अविद्या में, इस बेहोशी में मोह-मूढ़ता में संस्कार पर संस्कार बनाये जा रहा है। शरीर पर कोई संवेदना होती है। यह ही नहीं जानता कि कब हुई, कहां हुई? कोई संवेदना होती है। दुःखद होती है तो द्वेष का संस्कार बना लिया, सुखद होती है तो राग का संस्कार बना लिया। और ये संवदनाएं तो हमारे शरीर पर, भीतर ही भीतर प्रतिक्षण होती ही रहती है। कभी सुखद, कभी दुःखद, कभी असुखद-अदुःखद। कोई न कोई संवेदना होती ही रहती है और संस्कार पर संस्कार, संस्कार पर संस्कार बनाये जा रहा है। तो **अविज्जापच्चया सङ्खारा**। तब क्या होता है? **सङ्खारपच्चया विञ्ञाणं**, कोई कर्म-संस्कार बनता है तो जैसे जीवनधारा को, जीवनधारा के प्रवाह को एक धक्का लगा। अगले क्षण फिर कोई विज्ञान प्रकट होता है। कोई न कोई संस्कार बनाते रहता है और विज्ञान जागता रहता है। कोई न कोई संस्कार बनाते रहता है और विज्ञान जागता है। जीवन का जब अंत आता है तो ऐसा संस्कार उभर करके ऊपर आता है जो पत्थर की लकीर वाला है और उसके जरिये इस चित्तधारा को बड़ा गहरा धक्का लगता है, जोर का धक्का लगता है और जो विज्ञान यहां समाप्त हुआ, जिसकी यहां च्युति हो गयी, अब प्रतिसंधि होती है। वह जन्मता है। किसी अन्य शरीर के साथ जुड़ गया। अन्य शरीर के साथ उसकी संधि हो गयी। तो प्रतिसंधि विज्ञान हुआ। च्युति-विज्ञान समाप्त हुआ और संस्कारों के दबाव की वजह से एक नया प्रतिसंधि विज्ञान जागा। नयी जीवनधारा चल पड़ी। विज्ञान की वजह से नयी जीवनधारा चल पड़ी। अब क्या हुआ? तो **विञ्ञाणपच्चया नाम-रूपं**, विज्ञान अकेला नहीं, विज्ञान जागते ही उसके चारों खंड – विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार – चारों मिल कर 'नाम' कहलाते हैं। रूप के साथ इनकी जीवनधारा चल पड़ी। यह सारा शरीर-स्कंध, इसे भारत की पुरानी भाषा में रूप कहते थे। रूप के माने आकृति नहीं। उन दिनों की भाषा में **रुप्पती'ति रूपं**, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, उखड़ता जा रहा है, उसको रूप कहते थे। तो यह भौतिक पदार्थों का संग्रह नष्ट हुए जा रहा है, नष्ट हुए जा रहा है। नया बनता है, नष्ट होता है। नया बनता है, नष्ट होता है। यह रूप और यह नाम यानी मानस के चारों खंड, क्योंकि ये रूप के सहारे ही आगे बढ़ते हैं, उसके साथ जुड़े रहते हैं। माइंड और मैटर साथ-साथ काम करते हैं। **नमन करोती'ति नामं,** वह रूप को नमन करते हुए माने उसके साथ जुड़ा-जुड़ा आगे बढ़ता है तो विज्ञान के साथ-साथ ये सब नाम-रूप आ गये, **विञ्ञाणपच्चया नाम-रूपं**।

अब आगे क्या हुआ – **नामरूपपच्चया सळायतनं** । वह जागा कि ये छः इंद्रियां साथ जागी। आंख है, कान है, नाक है, जीभ है, त्वचा है और मन है – ये छहों इंद्रियां। फिर **सळायतनपच्चया फस्स** – जहां ये छः इंद्रियां जागी, उत्पन्न हुईं कि इनके अपने-अपने विषय – शब्द, रूप, गंध, रस, स्पृष्टव्य और चिंतन का स्पर्श होने लगा। जिस-जिस इंद्रिय के साथ जिस-जिस विषय का संबंध है, उसके साथ उसका स्पर्श होने लगा। कभी इस इंद्रिय के साथ इसके विषय का स्पर्श हुआ। कभी उस इंद्रिय के साथ उसके विषय का स्पर्श हुआ। छहों इंद्रियों में से किसी न किसी इंद्रिय पर उसके विषय का स्पर्श होता है।

स्पर्श होता है तब क्या होता है? बुद्धि विलास नहीं कर रहा यह व्यक्ति। अनुभूतियों से जान रहा है। क्या हो रहा है? सारी प्रकृति के रहस्य को अनुभूतियों से समझ रहा है, क्या हो रहा है? कैसे हो रहा है? तो देखता है, **फस्सपच्चया वेदना**, स्पर्श हुआ, जैसे ही स्पर्श हुआ कि एक वेदना उत्पन्न हुई। सुखद वेदना हो सकती है, दुःखद वेदना हो सकती है। असुखद-अदुःखद हो सकती है। वेदना उत्पन्न हुई। जैसे ही वेदना उत्पन्न हुई कि **वेदनापच्चया तण्हा**, तृष्णा उत्पन्न हुई। सुखद वेदना हुई माने सुखद अनुभूति हुई तो उसे रोके रखने की, उसका संवर्धन करने की ऐसी तृष्णा, रागमयी तृष्णा जागी। दुःखद संवेदना हुई तो उसे दूर करने की, उसे हटाने की द्वेषमयी तृष्णा जागी। तृष्णा में राग और द्वेष दोनों समा गये। तो **वेदनापच्चया तण्हा**।

बात समझ में आयी। अरे, अब तक तो यही माने जा रहे थे कि आंख और उसका विषय, इसके बंधन में नहीं पड़ जाना। राग या द्वेष जागता है वह हमारी इंद्रियों के विषयों के प्रति जागता है। अब समझ में आया, इंद्रियों के विषयों के प्रति कोई राग नहीं जागता, कोई द्वेष नहीं जागता। इंद्रियों के विषय जब इंद्रियों को स्पर्श करते हैं और स्पर्श करने पर जो संवेदना होती है, सुखद भी हो सकती है, दुःखद भी हो सकती है। उससे राग जागता है, रागमयी तृष्णा जागती है या द्वेषमयी तृष्णा जागती है। यह वेदना इतनी महत्त्वपूर्ण तो **वेदनापच्चया तण्हा**।

तण्हा जागी माने तृष्णा जागी तो **तण्हापच्चया उपादान**, आसक्ति। उस तृष्णा के प्रति आसक्त हुए जा रहा है, आसक्त हुए

जा रहा है, उपादान हो गया। गहरी आसक्ति हो गयी। गहरी आसक्ति हो गयी तो पत्थर की लकीर वाले गहरे-गहरे भव-संस्कार बनाये। बनाये ही। वह आसक्ति बनवायेगी। तो **उपादानपच्चया भव।** ऐसे भव-संस्कार, ऐसे भव-संस्कार जो कि अगला जन्म देने के कारण बन गये। तो **भवपच्चया जाति।** आज तो जाति शब्द जात-पांत के रूप में इस्तेमाल होता है। पुरातन भारत की जनभाषा में जन्म को जाति कहते थे।

तो भव-संस्कार इतना गहरा बना तो नया जन्म आया, **भवपच्चया जाति।** जब जन्म आया तो **जातिपच्चया जरामरणं सोक परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति।** अरे, जो जन्म हो गया तो बुढ़ापा भी आयेगा ही। मृत्यु भी आयेगी ही। अनचाही बातों का दुःख भी होगा ही। मनचाही बातों के न होने का दुःख भी होगा ही। शारीरिक दुःख होगा। मानसिक दुःख होगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के दुःखों में से गुजरेगा ही। जन्म जो हो गया।

एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होती'ति, इस प्रकार दुःखों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। सारी बात समझ में आ गयी। यह-यह होने से यह हो जाता है। यह-यह न हो तो यह नहीं होगा। **इमस्मिं सति इदं होति, इमस्मिं असति इदं न होति।** बड़ी सीधी-सी बात, वैज्ञानिक बात खूब समझ में आ गयी तो यह भी समझ में आ गया कि इन दुःखों के पहाड़ों को दूर कैसे किया जा सकता है?

अविज्जायत्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो, यह अविद्या बिल्कुल नष्ट हो जाय, जड़ों से निकल जाय तो कोई संस्कार बनेगा ही नहीं। संस्कार बनाना बंद कर देंगे तो –

सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा वेदनानिरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा जरामरणं सोक परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होतीति।

इस प्रकार कितना ही बड़ा दुःखों का पहाड़ सिर पर लिए चल रहा हो, सारे दूर हो जाते हैं। सारी बात खूब समझ में आयी। बुद्धि विलास नहीं कर रहा है। केवल चिंतन मनन नहीं कर रहा है। अनुभूतियों से जान रहा है। किस प्रकार ये विकार जागते हैं, और हमें दुःखी बनाते हैं। दुःखों का संवर्धन हुए जा रहा है, विकारों का संवर्धन हुए जा रहा है। और कैसे इस स्वभाव को पलट लें। स्वभाव को पलट लें तो विकार दूर हुए जा रहे हैं। दुःख दूर हुए जा रहे हैं, दुःख दूर हुए जा रहे हैं। विकार विमुक्त हो रहे हैं तो दुःख विमुक्त हो रहे हैं।

यह शृंखला कहां तोड़े? सारी की सारी शृंखला में अविद्या ही अविद्या समायी हुई। बेहोशी है, पता ही नहीं मैं क्या कर रहा हूं। ऊपर-ऊपर की दुनिया में मन घूमता है, भीतर क्या हो रहा है, जानता ही नहीं। भीतर अंधेरे में क्या घटना घट रही है, भीतर अंधेरे में क्या हो रहा है और मैं किस प्रकार प्रतिक्रिया कर रहा हूं। कुछ होश नहीं है। तो सारे दुःखों का भंडार बढ़ते ही जा रहा है, बढ़ते ही जा रहा है। इस शृंखला को कहां काटे? संस्कार बने जा रहे हैं। नया जन्म हो गया, नया विज्ञान आ गया। अब नाम-रूप आ गये। चित्त और शरीर की जीवनधारा चल पड़ी। छः इंद्रियां चल पड़ी और छः इंद्रियों का स्पर्श हो रहा है। स्पर्श हो रहा है तो वेदना हो रही है। बस, होश आ गया। और कहीं नहीं काट सकते। वेदना हो रही है और वेदना की वजह से नयी तृष्णा जाग रही है। चाहे राग की जागे या द्वेष की जागे। इसे यहां काटो।

तो पहले यह जानो कि कहां वेदना हो रही है? सुखद हो रही है कि दुःखद हो रही है? यही नहीं जानते तो यह भी नहीं जानेंगे कि हमने भीतर ही भीतर कहां राग जगाया, कहां द्वेष जगाया। उसके उद्गम तक पहुँचे ही नहीं। इसलिए सारे शरीर की यात्रा करते-करते इस लायक बनेंगे, यह क्षमता प्राप्त करेंगे कि सारे शरीर में, शरीर के अणु-अणु में प्रतिक्षण कोई न कोई संवेदना, कोई न कोई संवेदना होती ही जाती है। प्रकृति का नियम है। जहां जीवन है, वहां संवेदना है। वहां सजग होंगे।

अरे, यह वेदना है और मैं अज्ञान अवस्था में, अविद्या की अवस्था में प्रतिक्रिया करता हुआ राग जगाता हूं, द्वेष जगाता हूं तो व्याकुल होता हूं। तो इस वेदना को जानूं भी और राग नहीं जगने दूं, द्वेष नहीं जगने दूं। अनित्य बोध जगाऊं। यह वेदना कैसी ही क्यों न हो। दुःखद से दुःखद वेदना भी अनंत काल तक नहीं रहती। देखते-देखते समाप्त हो जायेगी। देर-सबेर समाप्त हो ही जायेगी। सुखद से सुखद संवेदना भी अनंत काल तक नहीं रहती। देखते-देखते समाप्त हो जायेगी। अरे, अनित्य है। अनुभव से जान रहा है। अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। इसके प्रति क्या राग जगाऊं? क्या द्वेष जगाऊं? अनित्य बोध जगाऊं। समता में स्थापित हो जाऊं। प्रज्ञा में स्थित हो जाऊं। अरे, तो मंगल के रास्ते पड़ गया। दुःख विमुक्ति के रास्ते पड़ गया। विकार विमुक्ति के रास्ते पड़ गया।

जो अपने भीतर अंतर्मुखी हो करके इस शरीर के भीतर होने वाली संवेदनाओं को यथाभूत जानता हुआ, उसके अनित्य स्वभाव को समझता हुआ राग के स्वभाव से बाहर निकलता है, द्वेष के स्वभाव से बाहर निकलता है। अरे, उसका मंगल ही मंगल। उसका कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। उसकी मुक्ति ही मुक्ति होती है।

पूज्य गुरुजी के प्रवचनों और वंदना की कैसेट्स

मुंबई के श्री दीपचंद शाह ने अपनी ओर से ऐसी व्यवस्था की है कि अधिक से अधिक साधकों को कम से कम दामों पर गुरुजी के प्रवचनों आदि की कैसेट्स मिलें। अतः अब दस दिवसीय शिविर के ११ प्रवचनों का सेट मात्र १६५/- रु. में तथा सोनी कैसेट्स का सेट मात्र ४४०/- में उपलब्ध है। प्रातःकालीन वंदना और दोहे के कैसेट भी सस्ते दामों में उपलब्ध हैं। (विक्रेताओं को १५% कमीशन भी।)

वंदना और दोहों की **सीडी** प्रत्येक २५०/- में, ११ प्रवचनों की **वीसीडी** का सेट ६५०/- में तथा विपश्यना साहित्य भी उपलब्ध है।

साधक निम्न पतों पर सीधे संपर्क करें (विपश्यना विश्व विद्यापीठ या संपादक का इससे कोई संबंध नहीं है।) : – (१) श्री दीपचंद शाह, बी-३५, डलास बिल्डिंग, ज्ञानमंदिर रोड, दादर (प.), मुंबई- ४०००२८, फोनः ४२२८१३४. (२) श्री राठी, शिवकृष्ण मेडिकल स्टोर, २०६, जूना आग्रा रोड, इगतपुरी-४२२४०३, फोनः ४४०३६.

थैलासीमिया से पीड़ित बच्चों के लिए आनापान शिविर का आयोजन

बच्चों में होने वाले थैलासीमिया रोग में शरीर के खून बनाने वाले अंग स्थायी रूप से विकार-ग्रस्त हो जाते हैं और उन्हें लगभग प्रतिमाह खून चढ़ाना पड़ता है। रोग का पता चलते ही माता-पिता व परिवार में उदासी व निराशा छा जाती है जिससे बच्चा भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता।

दिल्ली के रैडक्रास ब्लडबैंक में काम कर रही एक विपश्यना साधिका के सत्प्रयासों से प्रयोग के रूप में १४-४-०२ को इस रोग से ग्रस्त बच्चों का आनापान शिविर लगाया गया। इसमें १० से १६ वर्ष के बच्चों ने भाग लिया। इनमें १२ बालक व ५ बालिकाएं थीं। बच्चों ने बहुत अच्छी साधना की व आगे होने वाले आनापान शिविरों के प्रति अपनी रुचि दिखलायी। बच्चों के अभिभावकों में साधना के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण था। आशा है रोग के चिकित्सापक्ष के साथ-साथ मानसिक रूप से बच्चों को एक सुखी व संतुलित जीवन जीने की दिशा में आनापान साधना बहुत सहायक सिद्ध होगी।

आचार्यों के उत्तरदायित्व में परिवर्तन

1. Dr Bhogilal and Dr (Mrs) Kamala Gandhi:
   To serve Expatriate Indian Community in USA; AT Training in USA and Europe.
2. Mr John and Mrs Gail Beary:
   To serve Dhamma Kamala, Dhamma Ābhā (Thailand), Indonesia and Korea; To serve Dhamma Mahāvana and AT Training in North America.
3. Mr John and Mrs Joanna Luxford:
   To serve Europe including AT Training in Europe.

नये उत्तरदायित्व

1. Mr Kirk and Mrs Reinette Brown: To serve Dhamma Dipa.

नव नियुक्तियां

Assistant Teachers:

1. Mr L. H. Chandrasena. Sri Lanka
2. Mr Robert Cran. South Africa

दोहे धर्म के

कारण तेरे दुःख के, भीतर ही हैं जान।
क्या तूं ढूंढे बावरा! बहिर्मुखी नादान॥

बिन जड़ उखड़े फूलती, फलती विष की बेल।
बिना अविद्या के मिटे, रहे दुःख ही झेल॥

तोड़ अविद्या आवरण, जाग चेतना जाग।
अनित्य बोध की चेतना, कर दे पुष्ट विराग॥

न जाने जो स्वयं को, पर का करे बखान।
ज्ञान बोझ सिर पर धरे, मनुज बड़ा अनजान॥

नन्हीं सी तृष्णा जगी, बनी गहन आसक्ति।
जब तक मन आसक्त है, कहां दुखों से मुक्ति?

तृष्णा से ही जागते, असंतोष आक्रोश।
जगते दुर्मन द्वेष भय, खो देते हम होश॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास

• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
टे. ४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
टे. -४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५,• पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९,• चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता- २४३४८७४
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

दुख स्यूं आंख्यां मूंद कर, भाज्यां दुख नहिं जाय।
कारण दुख रा दूर कर, तो ही दुक्ख नसाय॥

चित्त मैल दुख नीपजै, दुख चित मैलो होय।
यो चक्कर जो समझग्यो, दुक्ख मुक्त है सोय॥

जाण दुखां रै मूळ नै, मूळ कट्यां सुख होय।
रोयां धोयां बावळा, दुक्ख दूर ना होय॥

जद तक दुख भोगत रह्यो, होयी ब्यथा अपार।
दुक्ख देखणो सीखग्यो, होग्यो दुख स्यूं पार॥

बाहर बाहर भटकतां, मोक्ष न पायो कोय।
जो भी भीतर देखियो, मुक्त हो गयो सोय॥

जागै धरम विपस्सना, अनित्यता रो ग्यान।
रोम रोम चेतन हुवै, प्रगटै पद निरवाण॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स

३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
टे. ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ४४०८६, ४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४६, वैशाख पूर्णिमा, २६ मई, २००२**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2002

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ४४०७६
फैक्स : (०२५५३) ४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: dhamma@vsnl.com